उपसंहार

भारतीय संगीत का ईतिहास पुरातनकाल से चला आ रहा हैं । ईन संगीत में उत्तर भारतीय संगीत पर दृष्टिपात करे तो यह संगीत, जनमान्य माना गया है । अर्थात् ईन संगीत में गायन, वादन एवं नृत्य ऐसी, तीनो विधाओं का समावेश हुआ हैं । अर्थात् शोधार्थी का विषय यह वादन से जुड़ा हुआ है । यदि वादन पर दृष्टिपात करे तो, शोधार्थी ने चर्मवाद्यो में से तबला यह विषय पसंद करके ईन वाद्य पर बजनेवाली विभिन्न रचनाएँ तथा घरानो पर विचार विमर्श करके दिल्ली एवं फरुखाबाद घराने पर अत्यंत कष्टसाध्य ऐसा शोध कार्य करने का प्रयास किया हैं । जिस प्रकार अन्य विधाओं में अलग–अलग घराने होते हैं । ठीक उसी प्रकार तबले में भी विभिन्न घराने होते है । यदि, तबले के घरानो पर दृष्टिपात करे तो, दिल्ली यह पितामुल्य घराना माना गया है । अर्थात् ईससे पूर्व किसी घराने का जन्म नहीं हुआ था । शोधार्थी ने अपना शोध ग्रंथ लिखने से पूर्व कई वर्षो तक तबले पर विभिन्न गुरुओं के द्वारा प्राप्त हुई ऐसी तालीम पर विचार विमर्श किया । फलतः तथ्य यह सामने आया कि केवल दिल्ली या केवल फरुखाबाद घरानो पर कार्य हुआ हैं । किन्तु, घराना स्वयं यह बतलाता है कि, किसी विशिष्ट वादन प्रणाली की अर्थात् क्रमशः वादन पद्धति को अपनाया जाय । ईसी कारणवश दिल्ली एवं फरुखाबाद घराने की क्रमशः वादन प्रणाली पर तुलनात्मक अध्ययन करके क्युं न शोध प्रबंध लिखा जाय, जिससे वर्तमानकाल में एवं भविष्यकाल में, ईन दोनो घरानो पर यदि किसी को अभ्यास करना हो तो यह शोध प्रबंध उन्हे अपना आगे का कार्य उजागर करने के लिए, फलस्वरूप बने ।

दिल्ली वस्तुतः तबले का पिता माना गया हैं । अर्थात् इस शोध प्रबंध में विभिन्न लेखको द्वारा लिखी गई पुस्तको को पाद टिप्पण के रूप में लिया गया हैं । किन्तु शोधार्थी का अपना कथन एवं अपने विचारों को भी देने का प्रयास किया हैं । यहाँ पर एक प्रश्न यह उठता हैं कि, क्या दिल्ली के बाद फरुखाबाद घराने का जन्म हुआ ?

किन्तु, सभी भलिभाति जानते है कि, दिल्ली घराने के पश्चात पुत्र के रुप में अजराडा घराने का नाम लिया जाता हैं । अपितु, इस घराने पर कार्य हो चुका था । इसी कारण फरुखाबाद घराने को चुना गया । दोनो घरानों की शुरुआत पर दृष्टिपात करे तो, करीबन १०० साल का फर्क दिखाई देता है । अर्थात् दिल्ली घराने की शुरुआत जनमान्य की दृष्टि से ई.स. १७१० से लेकर ई.स.१७३० तक मानी गई हैं । एवं फरुखाबाद घराने की शुरुआत १८वी शताब्दी में मानी गई है । दोनों घरानो की नींव अलग–अलग उस्तादों के द्वारा की गई हैं । जिसकी पुष्टि इसी शोध ग्रंथ के अंत में दोनों घरानो की परिशिष्ट के द्वारा उजागर करने का प्रयास किया हैं ।

दोनों घरानो पर विचार करे तो यह दोनों घराने स्वतंत्र तबलावादन के लिए, उपयुक्त माने गये हैं । जिसे, आज भी वर्तमानकाल में दोनों घरानो को जीवीत रखने में कई कलाकार अपना योगदान दे चुके हैं, एवं दे रहे हैं । दिल्ली घराना एक चतुश्र जाति का घराना माना गया हैं । अर्थात् क्रमशः बंदिशो में चतुश्र जाति का प्रयोग अधिकतोर से किया जाता हैं । किन्तु १०० साल के बाद फरुखाबाद घरानें में केवल चतुश्र जातियों का ही प्रयोग न करते हुए, विभिन्न जातियों का प्रदर्शन किया गया हैं । यदि ऐसा कहाँ जाय तो अतिशोयक्ति नहीं होगी । शोधार्थी का विषय दिल्ली एवं फरुखाबाद घराने की विधिवत तबलावादन परंपरा एवं तुलनात्मक अध्ययन यह हैं । अर्थात् दिल्ली घराने की विधिवत तबलावादन परंपरा एवं फरुखाबाद घराने की विधिवत तबलावादन परंपरा क्या रही होगी, क्या दोनो के वादन–प्रणाली में फरक दिखाई देता हैं ? या एक ही हैं ? इस पर अत्यंत कष्टसाध्य गहन अध्ययन करके जो तथ्य सामने, दिखाई दिये उन्ही पर दृष्टिपात करने का प्रयास किया हैं । शोधार्थी इन दोनों घराने से वंचित हैं । किन्तु इन दोनों घरानो का अभ्यास करने का पूर्णतः प्रयास किया गया हैं । अतः दोनों घरानो की विधिवत तबलावादन परंपरा एवं तुलनात्मक अध्ययन पर शोध ग्रंथ लिखने का प्रयास किया गया हैं । शास्त्रोक्त तबलावादन करना यह एक कठिन काम हैं, क्यों कि, जो

पूर्वजोने इन दोनों घरानो को संभालने में अतः अभी तक कायम रखने में जो महत्वपूर्ण कार्य किया है उसे भुला तो जा नहीं सकता बल्कि उसमें परिवर्तन करना ही असंभव हैं । निश्चित रूप से दोनों घराने स्वतंत्र तबलावादन करने में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं । यदि देखा जाये तो दिल्ली घराने का तबला विलंबित का अधिक माना गया है । अपितु फरुखाबाद घराने का तबला यह मध्यलय एवं दृतलय का माना गया हैं ।

विभिन्न लेखको के मतानुसार, एवं वर्तमानकाल में जिवीत इन दोनो घरानो के मूर्धन्य कलाकारों का साक्षात्कार करके जो निष्कर्ष सामने दिखाई दिया उन्हें ही इस शोध प्रबंध में उजागर करने का प्रयास किया है जो आप भलिभाति जानते हैं ।

क्रमश : वादन पर दृष्टिपात करे तो दोनों घरानो में किसी भी ताल में तबलावादन करने से पूर्व ताल को अच्छी तरह से समझकर उसे ठेको के रूप में बांधा जाता हैं । हो सकता हैं कि कलाकार घरानेदार बंदिशो को बजाने से पूर्व उस ताल की मात्रा, ताली, खाली, खंड, जाति, छंद समझ ले । और यह करने से वादको को अपने वादन में प्रस्तुति करने में सफलता प्राप्त हो, यह रही ठेके की बाता इस ठेके के साथ वादक सारंगी, हामोनियम या अन्य किसी वादन को माध्यम से लेहरे की संगति अपने साथ रखता हैं । ताकि, वह अपने वादन में रचनाओं को कुशलता से प्रस्तुति कर सके । दोनों घरानो की शुरुआत में दृष्टिपात करें तो पेशकारा अर्थात् पेशकार बजाया जाता हैं । यहाँ शास्त्र की दृष्टि से पेशकार की परिभाषा पर भी दृष्टिपात किया गया हैं । कियात्मक पक्ष पर एवं पुराने मूर्धन्य कलाकारो को एवं वर्तमान कलाकारो को सुनने के बाद यह दिखाई देता हैं कि दिल्ली घराने का पेशकार यह चतुश्र जाति का तो है ही । किन्तु पेशकार कि शुरुआत किनार पर बजानेवाली 'धा' से होती हैं । यदि इसकी पुष्टि करे तो पीछले अध्याय में लिपिबद्ध बंदिशो की लिखने का प्रयास किया हैं दिल्ली घराने के कलाकार पेशकारा बजाते समय यदि विचार करे तो पल्टा, बल इकाई का भी प्रयोग अपने वादन में करते हैं । इसके साथ-साथ तबलावादको ने अपने घरानो की बातो पर गोर से ध्यान

दिया हैं । इसी कारण खाली पर 'तिट' शब्द का प्रयोग करने का प्रयास किया हैं । धातीत्, तिट, तिटकिट जेसे महत्वपूर्ण शब्दो को प्रयोग करके पेशकार की बढत भी की गई हैं । इसी घराने के कई कलाकारो का पेशकार सुनने के पश्चात् एकसमान लगता है किन्तु उसके विपरीत फरुखाबाद घराने पर विचार करे तो यहाँ पर कलाकारोने 'धा' शब्द को ज्यादा प्राधान्य न देते हुए, धिक्डधिंता किया है । जिस प्रकार दिल्ली के कलाकारोने पेशकारा को एक विस्तारक्षम रचना मानी हैं । उसी प्रकार फरुखाबाद घराने के कलाकारोने भी इसे विस्तारक्षम रचना मानी हैं । शोधार्थी ने अपने शोध ग्रंथ में लिखने से पूर्व पुराने उस्ताद एव वर्तमान कलाकारो को प्रत्यक्ष या इलेकट्रोनिक के माध्यम से स्वतंत्र वादन सुनने का प्रयास किया हैं । अपनी कई वर्षो की तपश्चर्या यह बतलाती हैं कि, फरुखाबाद घराने में उस्ताद अमीरहुसैन खाँ साहब, ऊ. थिरकवाँ खाँ, ऊ. जहाँगीर खाँ, ऊ. शेख दाऊद खाँ, ऊ. हाजी दिलायत खाँ के पेशकारो में बहोत सामंजस्य दिखाई देता है और कही जगह पर फर्क भी दिखाई देता हैं । जिसकी पुष्टि पीछले अध्यायो में की गई हैं । वैसे पेशकारा यह विषय अत्यंत गहन–चिंतन करने का हैं । शोधार्थी इसे प्रायोगात्मक व्याख्यान करे तो इसकी पुष्टि हो सकती हैं ।

उपर हम बतला चुके है कि दोनो घरानो में विलंबित में बहोत कुछ काम हो चुका हैं । इसी प्रकार विधिवत क्रमको बढाने के लिए, दूसरा क्रम आता है वह कायदो का । कायदे की परिभाषा पर भी हम विचार कर चुके हैं । दोनो घराने कायदा बजाने में माहिर हैं । किन्तु दिल्ली के कायदे दो उँगलियों से बजते हैं। तो फरुखाबाद घराने के कायदे अनामिका का प्रयोग करते ही बजते हैं । दिल्ली के कायदो में विस्तार करते समय बल, पल्टा, इकाई, कुल्फी का प्रयोग किया गया हैं । इन कायदो की विशेषता पर दृष्टिपात करे तो कभी–कभी 'न' का प्रयोग मध्यमा से भी करते हैं । इसका प्रयोग अधिकतर ऊ. लतीफहुसैन खाँ साहब एवं पं. प्रेमवल्लभ जी करते थे । यह कायदे केवल दो उँगलियो से बजाने के कारण इसमें, गतिमानता आधिन नहीं पाई गई । इसके विपरीत फरुखाबाद

घराने के कायदो में गतिमानता पाई गई हैं । जिसकी पुष्टि ईन घरानो के कलाकारो के वादन में दिखाई देती हैं । जिस प्रकार दिल्ली घराने के कायदो में धाती, तिरकिट, तिट आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता हैं । ठीक उसी प्रकार फरुखाबाद घरानो के कायदो में कडधितिट, त्रक, कडधिंना जैसे जोडाक्षर का प्रयोग करते हुए भी कायदे फलक पर सुनाई देते हैं । शोधार्थी का कथन है कि, दोनो घरानो की कायदो की अपनी अलग खश्बु हैं । जिसे तुलना के रूप मे लिखना अर्थात्, किसी घराने की गलती दिखाना या किसी घरानो को कम दिखाना यह हो सकता हैं । किन्तु मेरा जो विषय है, उस पर कायदे की दृष्टि से दोनो घराने अपनी जगह पर अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं । हर तबलावादक की अपनी रुचि होती है कि । किसी को दिल्ली को पसंद है तो किसी को फरुखाबाद पसंद है । किसी को क्या पसंद है यह अपने पर निर्भर हैं ।

इन दोनो घरानो पर विचार करने के बाद स्वतंत्र तबलावादन में क्रमशः तीसरा स्थान रेले का आता हैं । अर्थात् यहाँ पर पिछले अध्याय में रेले की परिभाषा की पुष्टि की गई है । हमारे मन में यह प्रश्न निश्चित रूप से आयेगा कि इस रचना को कायदे के बाद ही क्यो बजाया जाता हैं । इसका मुख्य कारण क्या हैं ? कही तबलावादको को इसे पेश करने में लय के बारे में भ्रांति हैं । जो विभिन्न लेखको के लिखि हुई पुस्तको के माध्यम द्वारा एवं वर्तमान काल में जीवीत ऐसे मुर्धन्य कलाकारो के साथ साक्षात्कार करने से यह पता चलता है कि कही कलाकार इसे विलंबित में बजाते हैं । तो कही कलाकार इसे मध्यलय का स्थान देते हैं । किन्तु शोधार्थीने शास्त्र पक्ष और क्रियात्मक पक्ष को सामने रखते हुए , क्रियात्मक दृष्टिकोण से गहन अध्ययन करके इस पर सोचा जाय तो यह तथ्य सामने आता है कि इसे कायदे के बाद एवं विलंबित लय में ही बजाया जाय तो अतिशयोकित नहीं होगी । अपितु शोधार्थी का कथन यह है कि ईसी प्रकार स्वतंत्र तबलावादन में रेले का स्थान होना चाहिए ।

कायदे की उपलक्ष में रेले की रचना यह छोटी दिखाई देती हैं । अर्थात् तबले के अक्षरो को पुनरावर्तन करके यह रचना बजाई जाती है । दिल्ली के रेले पर विचार विमर्श करे तो, दिल्ली का रेला चतुश्र जाति का रेला माना गया हैं । अर्थात् इन रेलो में तिरकिट, धिडनग आदि शब्दों का प्रयोग अधिक किया गया हैं । जिस प्रकार दिल्ली के कायदो में खाली–भरी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है । ठीक उसी प्रकार रेले में भी खाली–भरी दिखाई देती हैं । यह भी एक विस्तारक्षम रचना है । हो सकता हैं कि पेशकार, कायदे के समान यह विस्तारक्षम रचना होने के कारण इसे विलंबित लय के रूप में बजाया जाता हो । क्योंकि यदि इसे टुकडो, चक्रदार के साथ बजाय जाय तो शास्त्र की दृष्टि से न्याय देना कठिन होगा । अर्थात् कायदे के उपलक्ष में रेले का विस्तार करना यह कठिन होता है । क्यों कि, रेले में विभिन्न शब्दो का प्रयोग कम दिखाई देता हैं । अब हम फरुखाबाद घराने के रेलो पर विचार करे तो ऊ. अमीरहुसेन खाँ, एवं ऊ. अहमदजान थिरकवाँ इस रचना को बजाने मे माहिर थे । यहाँ पर दोनो घराने विभिन्न है । दोनो घराने की रचनाएँ विभिन्न है । दोनो घरानो का विधिवत क्रम एवं लय एक हैं । किन्तु परिभाषा में कोई परिवर्तन नहीं हैं ।

फरुखाबाद घराने के रेले पर विचार करे तो कभी–कभी ऐसा महसूस होता है कि, यह रचना इसी घरानों के लिए बनी हुई हैं । अर्थात्, इसकी पुष्टि उपर दिए हुए, दोनो मूर्धन्य कलाकारो के वादन से होती हैं । धिरधिर जेसे कठिन शब्दो का उपयोग इस घराने के वादक अधिक करते हैं । शोधार्थी का विचार यह है कि, दिल्ली के रेलो मे मध्यमा एवं तर्जनी से ही धिरधिर का निकास किया जाता हैं । किन्तु फरुखाबाद घराने में पूर्ण हथेली से बजाया जाता हैं । तबलावादक दोनो घरानो के रेलो में अपनी कुशाग्र बुद्धि से चाहे उतने पल्टे बना सकता है एवं बजा सकता हैं । तृतीय अध्याय में इन दोनो घरानो के रेले की रचना पल्टो के साथ लिपिबद्ध करने का अत्यंत कष्टसाध्य प्रयास किया हैं । शोधार्थी का कथन हैं कि इसे बजाने में दोनो घराने के कलाकारो में एक

विशेष प्रकार का निकास को ध्यान मे रखते हुए, रियाज करने की आवश्यकता पडती हैं । यह तो सभी तबलावादक भलिभाति जानते है कि, रेला यह तैयारी की बंदिश हैं एवं तैयारी में ही बजाई जाती हैं । स्वतंत्र तबलावादन में रेले का स्थान दोनो घरानो में महत्वपूर्ण तो है ही किन्तु फरुखाबाद घराने में रेले के साथ रव बजाने की प्रथा हैं। अर्थात्, रव याने रविश । किसी चीज का बार–बार मंथन करना, उसे रव संज्ञा दी जा सकती हैं । जिस प्रकार हर घराने के कायदो का विस्तार करते समय पल्टो में केवल कुछ ही अक्षरो का प्रयोग करके पल्टा बनाया जा सकता हैं एवं जिन शब्दो का उपयोग होता हैं, उन्ही शब्दो को उपयोग करते हुए, इकाई बजाई जाती हैं । उसी प्रकार फरुखाबाद घराने के रेलो से रव बजाने की प्रथा हैं । रेले के उपलक्ष में इसमें और कम शब्दो का प्रयोग होने के कारण रव के पल्टे बनाने में गति अवरोध प्राप्त होती हैं । किन्तु, यह रचना केवल वही तबलावादक बजा सकता है जिसके हाथ में सही निकास, सही रियाज और सही तालीम होगी ! इस में तिरकिट, धातीगीन, धिनगीन इत्यादि शब्दो का प्रयोग किया जाता हैं ।

स्वतंत्र तबलावादन में अविस्तारक्षम रचना का स्थान अर्थात् मध्यलय का स्थान माना जाता हैं । इन दोनो घरानो में कई ऐसी रचना है जो अविस्तारक्षम है । किन्तु उनका स्थान अपनी जगह पर निश्चित रूप से महत्वपूर्ण हैं । यदि उनकी सौंदर्य पर दृष्टिपात करे तो वह मध्यलय में ही शोभा देती हैं । पूराने उस्तादो ने ऐसी कई रचनाएँ की जिन्हें मध्यलय में ही बजाया जाय तो वह आकर्षक लगती थी । शोधार्थी ने तृतीय अध्याय में ईन रचनाओं की पुष्टि की हैं । जिनमें मुखड़े, टुकड़े, गत, गत कायदा, गतो के प्रकार, चक्रदार, चक्रदारो के प्रकार, फर्द, नवहक्का ऐसी अनेक रनचाओं को लिपिबद्ध करने का प्रयास किया हैं । अर्थात् स्वतंत्र तबलावादन की पूर्णाहूति तभी हो सकती हैं, जब ईन रचनाओ को खूबसुरती से पेश की जाया । वैसे शोधार्थी ने उपर ही बतलाया हैं कि, दिल्ली घराना मध्यलय के लिए कितना उपयुक्त हैं ? किन्तु परंपरा को और मूर्धन्य

कलाकारो को सन्मान देते हुए यह स्पष्ट होता हैं कि दिल्ली एक, विलंबित लय के लिए उपयुक्त माना गया हैं । इसका अर्थ यह नहीं कि, इसमें मध्यलय नहीं हैं । दिल्ली घरानो के दो उँगलियो की गते, इतनी, खूबसूरती से पेश की जाती है कि, श्रैष्ठ तबलावादको की भी दो मिनिट विचार करना पड़ता हैं । क्या तर्जनी एवं मध्यमा में ईतनी ताकद हैं कि जो एक घराने को पेश कर पाये ? अपितु, शोधार्थी का ठोस विधान हैं कि दिल्ली घराना एक पितातुल्य घराना रहा हैं । निश्चित रुप से समय बदलता गया । स्वतंत्र तबलावादन में नये घरानो का जन्म हुआ । रचनाएँ बदलती गई, कमीयों की पूर्ति की गई, लय में बदलाव दिखाई देने लगे, निकास में परिवर्तन हुआ । अत्यंत कष्टसाध्य परिश्रम से तबला फलक पर बजने लगा । किन्तु, सौंदर्य में कोई बदलाव नहीं आया ।

दिल्ली या फरुखाबाद दोनो घराने के मध्यलय की शुरुआत सर्वप्रथम ठेके से ही कि जाती हैं । किन्तु, एक छोटा सा मुखड़ा लगाकर सम पर आना, एक अलग आनंद देता हैं । यदि, इन दोनो घरानो के वादन में दृष्टिपात करे तो मुखड़े के स्थान के बाद, छोटे–छोटे टुकड़े बजाये जाते हैं, जो तबलावादको को एवं श्रोताओ को एक अलग आनंद देता है, जिसे कितना आनंद हुआ, यह कहना मुश्किल हैं । यहाँ पर टुकड़े की परिभाषा एवं लिपिबद्ध की हुई रचनाओं का तालमेल एक जेसे दिखाई देता हैं । अर्थात् जैसे शास्त्र वैसे ही क्रियात्मक । गतो के बारे में यदि कहाँ जाय तो इन में कही गत आज भी उपलब्ध हैं । जिसे, तिहाईरहित गत, तिहाईसहित गत, मंजेदार गत, त्रिपल्ली गत, चौपल्ली गत ऐसे अनेक गतो का इन दोनो घरानो का मध्यलय में एक अलग गुलदस्ता रखाँ जाता है जिसकी तुलना कीसी और बंदिश से नहीं हों सकती । यह रहाँ एक गत का विचार । शोधार्थी का कथन है कि, फरुखाबाद घराना गतो के लिए ही महान माना जाता हैं । ईसकी पुष्टि पुराने कलाकार एवम् जीवीत कलाकारो के के वादन में दिखाई देती हैं । गत के साथ गत–कायदो का भी समावेश किया जाता हैं । गत की परिभाषा ही बताती हैं । गत अर्थात् गतिमानता । जिन में हाथ की रखावट, गतिमानता की ओर दिखाई देती

हैं, किन्तु यह दोनो बजाने में कही बार नियमों का उल्लंघन किया जाता हैं । ऐसी गतों की बढत भी कि जाती है । किन्तु पेशकारा, कायदे, चलन या रेले की उपलक्ष में कम दिखाई देती हैं । फरुखाबाद घराना इन रचनाओं के लिए बाकी के अन्य घरानों की तुलना में अपना अलग स्थान रखता हैं । किसी अन्य घराने के कलाकारो को कहने को जरुरत नहीं पड़ती की यह फरुखाबाद घराना हैं । शोधार्थी अत्यंत कष्टसाध्य प्रयास करने के बाद यह कथित करता हैं कि दिल्ली घराने में धिरधिर शब्द का जितना प्रयोग नहीं हुआ, उसके अधिक धिरधिर शब्द का प्रयोग फरुखाबाद घराने में हुआ, फरुखाबाद घराने में धिरधिर का प्रयोग ज्यादा होता हैं इसमे कोई संदेह नहीं हैं । रही बात, चक्रदार, फर्द की । किन्तु, चक्रदार एवं फर्द के आयाम अपने निश्चित हैं । यदि उन बंदिशो को कही बदलकर बजाया जाय, तो मूल बंदिशो का रहा हुआ सौंदर्य नष्ट किया ऐसा मेहसूस होता हैं। इसलिए, शास्त्रोक्त तबलावादन करना बड़ा कठिन परिश्रम हैं । जिसे कला की निरंतर साधना करनी हो, अपने वाद्य के प्रति लगाव हो, वही तबलावादक वादन पेश कर सकता हैं ।

दोनो घरानो के वादन की पूर्तता करते समय एक लंबी बंदिश बजाकर वादन की समाप्ति की जाती हैं । किन्तु, शोधार्थी यहाँ पर एक बात बतलाना चाहता है कि, आजकल के नौजवान वादक (दोनो घरानो के) मध्यलय की इन बंदिशो को बजाते समय हर बंदिश के बीच में रेले का स्थान कायम रखते है । यह नई प्रणाली शुरु हुई हैं । कभी–कभी एक जोरदारयुक्त तिहाई लगाकर वादन की पूर्णाहुति करना, यह भी प्रणाली नवजात कलाकारो में दिखाई देती हैं ।

दिल्ली एवं फरुखाबाद घरानो के कई कलाकारोने अपना योगदान दिया हैं । किन्तु, शोधार्थीने अपने बुद्धि के अनुसार, कही कलाकारो की जीवनीयाँ देने का प्रयास किया हैं । यदि इन दोनो घरानो के कलाकारो में कुछ कलाकारो के नाम यदी छूट जाते है तो शोधार्थी उसे क्षमाप्रार्थी हैं । अंत में, शोधार्थी शोधग्रंथ लिखने के बाद उपसंहार के

माध्यम से यह कहना चाहता है कि दिल्ली पिता रहा हैं एवं फरुखाबाद प्रपौत्र रहा हैं । दोनो घराने अपनी जगह पर महान हैं । आज के एवं भविष्य के कलाकार इन दोनो घरानो को कायम रखने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देंगे ऐसी में आशा रखता हूँ । यदि, इस शोध प्रबंध में मेरे से कोई अंजाने में भूल रह गयी हो और भविष्य में कोई विद्यार्थी इस पर और शोध कार्य करना चाहता है तो वह निश्चितरूप से कर सकता हैं । किन्तु मेरा शोध प्रबंध उसे निश्चितरूप से फलः स्वरूप रहेगा ऐसी आशा करता हूँ ।